गंगा मैया
भाग 4

भैरव प्रसाद गुप्त

गंगा मैया

भाग 4

दस

यह कितनी असम्भव बात थी, भाभी जानती थी। फिर भी इस बात को अपने मन में पोसे जा रही थी। आख़िर क्यों?

आदमी के लिए जीने का सहारा उसी तरह आवश्यक है जैसे हवा और पानी। किसी के पास कोई वास्तविक सहारा नहीं होता, तो वह अवास्तविक सहारा ही का सहारा लेता है। वह एक कल्पना, एक स्वप्न का सहारा सामने खड़ा कर लेता है। सभी कल्पनाएँ और स्वप्न किसी ठोस आधार पर ही अवलम्बित हों, ऐसी बात नहीं। बहुत-सी कल्पनाओं और स्वप्नों के आधार भी काल्पनिक और स्वप्निल होते हैं। लेकिन आदमी उन्हीं से जीवन की यथार्थ शक्ति प्राप्त करके जीता रहता है। कौन जाने इस विचित्र संसार में कहीं निराधार कल्पना और स्वप्न भी एक दिन सही हो जाएँ!

यही सही है कि इस तरह के सहारे का सृजन आदमी उसी स्थिति में करता है, जब उसके लिए कोई दूसरा चारा ही नहीं रह जाता। जीने की स्वाभाविक अदम्य चाह आदमी को विवश करती है कि वह ऐसा करे। क्या भाभी की परिस्थिति ऐसी ही नहीं थी? फिर वह ऐसा कर रही थी, तो इसमें अस्वाभाविक क्या है?

जिस दिन उसने मटरू के मुँह से गोपी की वे चन्द बातें सुनी थीं, उसी दिन से जैसे बहुत पहले से उसके हृदय में उगे उस अंकुर को उन बातों ने अमृत से सींचना शुरू कर दिया था। वे बातें उसके जीवन के सूने तारों को हर क्षण झंकृत करती रहती! उसके होंठ सदा एक मन्त्र की तरह बुदबुदाया करते, "गोपी को उसकी बहुत चिन्ता रहती है। बेचारा रात-दिन भाभी-भाभी की रट लगाये रहता है...इन दोनों में बहुत मोहब्बत थी क्या?" और उसके प्राण जैसे एक मधुरतम संगीत के अमृत में नहा उठते। आत्मा जैसे विह्वल हो बोल उठती, "हाँ, मोहब्बत थी, बहोत...परदेशी, तू उसे चिट्ठी लिखना, तो मेरी तरफ से यह लिख देना कि मुझे भी उसकी चिन्ता लगी रहती है- मेरे प्राण भी रात-दिन उसकी रट लगाये रहते हैं...हाँ, परदेसी, हममें बहुत मोहब्बत थी, बहोत!"

भाभी को इस मन्त्र के जाप ने बहुत बदल दिया था। वह चिड़चिड़ापन, वह कड़वापन, वह झुँझलाहट, वह क्षुब्धता, वह बेरुखी अब ख़तम हो गयी थी। अब वह अपने को कुछ उत्साहित अनुभव करती, काम में कुछ रस लेती, पूजा-पाठ का कुछ अर्थ समझती, सास-ससुर की सेवा-सुश्रुषा में उसे कुछ फल दिखाई देता। व्यर्थ ज़िन्दगी में एक सार्थकता का आभास होता- कोई है, जो उसकी बहुत-बहुत चिन्ता करता है, उसकी रात-दिन रट लगाये रहता है। कोई है, कोई है...

घर की कलह मिट गयी। सब कुछ सुचारु रूप से चलने लगा। सास को कोई शिकायत नहीं रह गयी। पका-पकाया दोनों जून, मीठी-मीठी, आदर-भाव की बातें, हर आज्ञा पर एक पाँव पर खड़ी बहू, कभी हिलने-डुलने का मौका न देने वाली, बड़ी रात गये तक उबटन की मालिश! करम-फूटी बहू घर की लक्ष्मी न बन जाये तो क्या बने? ससुर तो पहले ही उसके सेवा के गुलाम थे। वे जानते थे कि जिस दिन बहू ने हाथ खींचा, वह कल मरने वाले होंगे, तो आज ही मर जाएँगे। औरत के बस की बात कहाँ रह गयी थी। बल्कि वह तो उनकी लम्बी बीमारी से आज़िज़ आकर कभी-कभी ऐसे सरापने लगती कि जैसे बूढ़ा भार हो गया हो। बहू की बड़ी तीमारदारी ने तो सचमुच उनमें यह उम्मीद पैदा कर दी थी कि वे बच जाएँगे। उनके मुँह से हर क्षण असीस के शब्द झड़ा करते।

कभी-कभी उन असीसों से एक कुलबुलाहट का अनुभव करके भाभी पूछ बैठती, "बाबूजी, मुझ अभागिन को आप ऐसे असीस क्यों देते हैं?"

बूढ़े की आँखों में आँसू भर आते। व्याकुल होकर वे बोलते, "मैं जानता हूँ, बहू, कि यह ऊसर को सींचना है। लेकिन अपने मन को क्या कहूँ? मानता ही नहीं, बहू मैं तो हमेशा यही प्रार्थना करता हूँ कि तू सुखी रहे!"

एक करुण मुस्कान होंठों पर लाकर भाभी कहती, "सुख तो उन्ही के साथ चला गया, बाबूजी!" और टप-टप आँसू चुआने लगती।

"तू सच कहती है, बहू," बूढ़े आद्र्र कण्ठ से कहते, "औरत का लोक-परलोक मरद से ही है।"

उनके ठेहुने पर सिर रखकर बिलखती हुई भाभी कहती, "मेरा लोक-परलोक दोनों नसा गया, बाबूजी। आप अब मुझे असीस दीजिए कि जितनी जल्दी हो सके, इस संसार से छुटकारा मिल जाए!"

"नहीं, बहू, नहीं! तू भी इस अपाहिज बूढ़े को छोडक़र चली जाना चाहती है?" बूढ़े काँपते स्वर में कहते।

सिर उठाकर आँचल से आँसू पोंछ भाभी कहती, "देवर की नयी बहू आएगी। वह क्या आपकी सेवा मुझसे कम करेगी?"

"कौन जाने, बहू कैसी आएगी? तू तो पिछले जनम की मेरी बेटी थी। न जाने कितना गंगा नहाकर इस जनम में तुझे बहू के रूप में पाया!" बूढ़े गद्गद होकर कहते, "दूसरे की बेटी क्या इस तरह किसी की सेवा कर सकती है? यह तो मेरा सौभाग्य है, बेटी, कि

तुझ-सी बहू मुझे मिली। नहीं तो कौन जाने अब तक मेरी मिट्टी कहाँ गल-पच गयी होती।"

"मेरा दुर्भाग्य भी तो यही है बाबूजी, कि सारी उमर विपदा झेलने के लिए जी रही हूँ। परान नहीं निकलते। रोज मनाती हूँ कि कब ये परान निकलें कि साँसत से छुटकारा पाऊँ! आख़िर अब मेरी ज़िन्दगी में क्या बच गया है, जिसके कारण परान अटके रहें!" भाभी निढाल होकर कहती।

"अपने भाग से ही कोई नहीं मरता-जीता, रे पगली!" बूढ़े उसे सान्त्वना देते "जाने किसके भाग से तू जी रही है। मेरे मन में तो आता है कि मेरे भाग से ही तू ज़िन्दा है। रामजी ने मुझे ऐसा रोग दिया, तो साथ ही तुझ-सी बहू भी दी, कि रात-दिन सेवा कर सके। बहू, अपने चाहने-न चाहने से क्या होता है? जो रामजी चाहते हैं, वही होता है। कौन जाने रामजी की इसमें क्या मर्जी हो! बहू, मैं तो सोचूँ कि मेरी ही सेवा के लिए तू पैदा हुई।...हाँ री, ऐसा सोचते बख़त तुझे गोपी का मोह नहीं लगता? तुम दोनों में कितनी मोहब्बत थी! मटरू उस दिन कहता कि गोपी को तेरी बहुत चिन्ता रहती है। बहू, वह तुझे बहुत मानता है। जब तक वह जिएगा, तुझे कोई तकलीफ न होने देगा। निसाखातिर रह।"

"कौन जाने, बाबूजी भाग में क्या लिखा है? देवर का मोह मुझे भी कम नहीं लगता। उसे एक बार देख लेती, फिर मर जाती। जाने उसकी नयी बहू कैसी आये। उसका व्यवहार मेरे साथ कैसा हो। मुझसे तो कुछ सहा न जाएगा, बाबूजी! कहीं देवर का मन मैला हुआ, तो मैं तो कहीं की न रहूँगी।" भाभी फिर सिसक उठी।

"यह तू क्या कहती है, बहू?" बूढ़े एक मीठी डाँट के साथ कहते, "तू मेरी बड़ी बहू है! तू घर की मालकिन की तरह रहेगी! मेरे रहते..."

"आपका बस कहाँ चलने का बाबूजी? निरोग रहते, तो मुझे किसी बात की चिन्ता न रहती। उसने आकर कहीं देवर पर जादू फेंका और वह उसके बस में होकर...नहीं बाबूजी, मेरा तो मर जाना ही अच्छा है! कहीं ताल-पोखर..."

"बहू!" बूढ़े जैसे चौंककर चीख पड़ते, "ताल-पोखर का नाम कभी फिर मुँह पर न लाना! जानती है, तूने किस खानदान की बहू है! भले ही घर में सड़-गल जाना, लेकिन, बहू, खानदान पर कलंक का टीका न लगाना! किसी को कहने का अगर कभी मौका मिल गया कि फलाँ की बहू ताल-पोखर में डूब मरी, तो मैं अपना सिर फोड़ लूँगा! इस

बूढ़े के सिर का ख़्याल रखना, बेटी, और चाहे जो करना!" आवेश से थककर बूढ़े काँपने लगते।

आँचल से आँसू पोंछते भाभी वहाँ से हट जाती। इस बूढ़े से कोई बात करना व्यर्थ है। यह कुछ नहीं समझता-कुछ नहीं! इसे अपनी तीमारदारी की चिन्ता है। बूढ़ी को घर के काम-काज और अपनी सेवा के लिए उसकी ज़रूरत है। कोई नहीं ख़याल करता कि आख़िर उसे भी तो कुछ चाहिए। लेकिन किसी को ख़याल भी कैसे हो? स्वप्न में भी कोई यह कल्पना कैसे कर सकता है कि एक क्षत्री-कुल की बेवा बहू ...असम्भव, असम्भव! और भाभी में फिर जैसे एक क्षुब्धता भर उठने को होती कि तभी कोई कानों में गुनगुना उठता, "मुझे तुम्हारी चिन्ता है, भाभी! मैं रात-दिन तुम्हारी रट लगाये रहता हूँ! तुमसे मैं कितनी मोहब्बत करता था! मुझे आ जाने दो भाभी, फिर तो..."

और भाभी फिर एक हिंडोले पर झूलने लगती। कोई परवाह करे या न करे, वह तो...और यह काम में मगन हो जातीं।

फिर पहले ही का कार्यक्रम चलने लगता था। वही पूजा, वही रामायण-पाठ, वही सब-कुछ। ठाकुर से प्रार्थना करती, "तेरी बाँह बड़ी लम्बी है, ठाकुर! नामुमकिन को भी मुमकिन करना तेरे लिए कोई मुश्किल नहीं! कुछ ऐसा करना कि..."

एक दिन बिलरा को भूसे की खाँची थमाने गयी, तो उसके मन में उठा कि बिलरा फिर वही बात कहे। लेकिन बिलरा भय खाकर सिर झुकाये रहा। तब भाभी ने ही टोका, "क्यों रे, तुझे कोई हत्या लगी है क्या, जो इस तरह चुप बना रहता है!"

सिर झुकाये ही बिलरा ने कहा, "सच ही, छोटी मालकिन, क्या मेरे मुँह से उस दिन ऐसी कोई बात निकल गयी थी..."

"अरे, वह तो मैं भूल गयी। नाहक तू..."

"छोटी मालकिन, मैं मन की बात न रोक सका, कह डाली। मेरे कहने से तुमको कष्ट हुआ। मुझे माफ कर दो। छोटी मालकिन, हम लोगों के दिल में कोई गाँठ नहीं होती। तुम लोग तो मन में कुछ और रखते हो, मुँह से कुछ और कहते हो। मुझे तो ताज्जुब होता है कि बड़े मालिक और मालकिन आँखों से तुम्हारा यह रूप कैसे देखते हैं! मेरा तो कलेजा फटता है! इसी उम्र से तुम साधुनी बनकर कैसे रह सकती हो? इसलिए मन में उठा कि कहीं छोटे मालिक के साथ तुम्हारा..."

भाभी का मन गद्गद हो गया। आँखें मुँद सी गयीं। लेकिन दूसरे ही क्षण जैसे किसी ने खींचकर एक थप्पड़ जमा दिया हो। वह बोली, "ऐसी बात न कहा कर बिलरा।" और अन्दर भाग गयी।

बिलरा कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। फिर होंठों पर एक करुण मुस्कान लिये नाँद की ओर चल पड़ा। सोच रहा था कि उस दिन का गरम लोहा आज कुछ ठण्डा पड़ा गया है। आज डाँट नहीं खानी पड़ी। सच, अगर ऐसा हो जाता तो कितना अच्छा होता! बेचारी की ज़िन्दगी सुख से कट जाती। छोटे मालिक ब्याह न कर सकें, तो उसे रख तो सकते ही हैं। कितने ही उनकी बिरादरी के ऐसा करते हैं। सुनने में तो आता है कि इनके परदादा भी एक चमारिन को रखे हुए थे। फिर यह तो उनकी भाभी ही हैं। थोड़े दिन हो-हल्ला होगा, फिर सब आप ही शान्त हो जाएगा। कसाइयों के हाथ पड़ी एक गऊ की जान तो बच जाएगी। कितना पुण्य होगा!

महीने-दो महीने में रात-बिरात मटरू सर-समाचार लेने ज़रूर आ जाता। अब वह मट्ठा भी फूँककर पीता था। दुश्मनों को भूलकर भी अब वह ऐसा कोई मौका देने को तैयार न था कि पहले ही की तरह फिर पकड़ में आ जाए। वह दीयर कभी नहीं छोड़ता। जानता था कि इस प्रकृति के किले में कोई उस पर हमला करने की हिम्मत न करेगा। अब वह पहले की तरह अकेला भी न था। उसकी झोंपड़ी के पास दर्जनों झोंपडियाँ बस गयी थीं। पचासों किसान नौजवान अपनी लाठियों के साथ उनमें रहते थे। कई अखाड़े भी खुल गये थे। सबकी बैल-भैंसें भी वहीं रहती। मटरू जब छूटकर आया था, तो रब्बी की फसल कट चुकी थी। सबका ख़याल था कि दीयर में सिर्फ रब्बी की ही फसल बोयी जा सकती है। फिर तो बरसात शुरू हो जाती है और चारों ओर पानी ही पानी नजर आता है। लेकिन मटरू खाली बैठना न चाहता था, उसने तय किया कि अब ऊख बोयी जाए। सबने ना-ना किया। लेकिन मटरू न माना। उसने कहा कि गंगा मैया की कृपा होगी तो ऊख भी होगी। ऊँची, अच्छी मिट्टी की ज़मीन देखकर उसने ऊख बो दी। उसकी देखा-देखी औरों ने भी हिम्मत की कि एक का जो हाल होगा, सबका होगा। जाएगा तो बीया और कहीं आ गया तो गुड़ रखने की जगह न मिलेगी।

दीयर गुलज़ार हो गया। झोंपडियाँ बस गयीं। चूल्हे जलने लगे। भैंसें रँभाने लगीं। अखाड़े जम गये। बिना किसी विशेष मेहनत के ऊख ऐसी आयी कि देखने वालों को ताज्जुब होता। तर, चिकनी मिट्टी का मुकाबिला बाँगर की मिट्टी क्या करती? वहाँ चार-चार हाथ की भी ऊख हो जाए, तो बहुत, वह भी बड़ी मशक्कत के बाद। और जब यहाँ ऊखों ने सिर उठाया तो ऐसा लगा कि हाथी डूब जाए, बस, अब डर था गंगा मैया का। बरसात सिर पर चढ़ आयी थी। नदी बढ़ने लगी थी। सबकी धुकधुकी उसी ओर

लगी थी। सब कहते, "गंगा मैया! किरिपा कर दो, तो ऊख काटे न कटे!" सब यही बिनती करते कि गंगा मैया इस साल धार पलट दें।

कुछ ऐसी होनहार कि सच ही नदी की मुख्य धारा अबकी उस पार बन गयी। पानी इधर भी खूब फैला, लेकिन दस-पन्द्रह दिन में ऊखों की जड़ों में और भी मिट्टी छोडक़र चला गया। किसानों की खुशी का ठिकाना न रहा। मटरू की शाबाशी होने लगी। उसने कहा, "यह सब गंगा मैया की किरिपा है!"

ज़मींदारों ने सीधे तौर पर छेडऩे की कोशिश न की थी। अब मटरू अकेला न रह गया था। सुनने में बस यही आया कि उन्होंने सदर में दरख़्वास्त दी है कि किसानों ने उनकी ज़मीन पर कब्जा कर लिया है, सरकार पड़ताल कराए और बिागयों को दण्ड दे। वरना बलवा होने का अन्देशा है।

फिर क्या हुआ कुछ पता न चला। सरकार का दरबार बहुत दूर है, जाते-जाते पुकार पहुँचेगी, होते-होते सुनवाई होगी। तब तक क्या दीयर में कोई निशान बाकी रह जाएगा? और फिर कुछ होगा, तो देखा जाएगा। पटवारी के नक्शे में तो बस दीयर लिखा है, कागज-पत्तर में भी दीयर किसी के नाम नहीं है। कोई मेंड़-डाँड़ तो बन नहीं सकती, यहाँ बनायी भी जाए, तो क्या गंगा मैया रहने देंगी? सरकार क्या खाक पड़ताल करेगी!

बरसात में मटरू और उसके साथी काफी होशियारी से रहे। एक तरह से अब उनका एक दल बन गया था। आस-पास के गाँवों के किसान उनके भाई-बन्द थे। हर बात की खोज-ख़बर लेते रहते और मटरू के कान में पहुँचाया करते। अब मटरू पर जान देने वाले सैकड़ों थे। यों भी मटरू को पकड़ ले जाना आसान न था।

मटरू रात में ही अपने दस-पाँच साथियों के साथ गोपी के घर जाता और रात रहते ही चला आता। सब उसका सत्कार बड़ी उमंग से करते। बूढ़े-बूढ़ी पूछते "गोपी की शादी की कहीं बात चलायी?"

मटरू कहता, "अरे, हमें चलाने की क्या जरूरत? दर्जनों यों ही मुँह बाये बैठे हैं। उसे आ तो जाने दो। फिर एक महीने के अन्दर ही शादी लो। वह बहू ला दूँगा कि गाँव देखेगा!"

मटरू गोपी को बराबर चिट्ठी देता। लेकिन उसने गोपी को उसकी औरत के बारे में कुछ न लिखा था। क्यों खामखाह के लिए दुख का समाचार लिखे? न जाने उसके चले आने के बाद गोपी की कैसे कटती है। कई बार सोचा कि मिल आये। लेकिन फुरसत

कहाँ? फिर गंगा मैया को वह कैसे छोड़े, अपने किसान भाइयों को कैसे छोड़े? उसी के दम से तो सब दम है। कहीं उसकी गैरहाज़िरी में ज़मींदार कुछ कर बैठें, तो?

अन्दर खाने जाता, तो भाभी के बनाये खयका की प्रशंसा करके कहता, "तभी तो गोपी लट्टू है! मंन भी कहूँ, क्या बात है? इतना बढिय़ा खयका जो एक बार खा लेगा, वह क्या गोपी की भौजी को कभी भूल सकता है?"

सास भी अब कहती, "ये दोनों बहनें बड़ी गुनवती थीं, बेटा! करम को क्या कहूँ?"

भाभी सुनती और मन-ही-मन न जाने क्या गुनती। एक बार तो मौका निकालकर उसने अपने को मटरू को दिखा दिया था। मटरू खुद भी उसे देखने को उत्सुक था। वह देखकर जैसे छाती पर एक घूँसा खा गया था। उसने कब सोचा था कि गोपी की भौजी अभी ऐसी जवान है, ऐसा बिजली-सा उसका रूप! तभी से उसका दिल भाभी के प्रति सहानुभूति से भर गया था। कभी-कभी बड़ी मीठी-मीठी बातें वह यही सहानुभूति दरशाने के लिए माँ से भाभी के बारे में कह देता। भाभी निहाल हो उठती।

मटरू को चिन्ता लग गयी। गोपी की भौजी-सी सुन्दर बहू गोपी के लिए कहाँ से खोजकर लाएगा? उसने तो आज तक ऐसी औरत कहीं न देखी। गोपी उस पर जान देता है, तो इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। ऐसी औरत पर कौन जान न देगा? इसी तरह इसकी बहन भी तो होगी। फिर दूसरी से उसका मन कैसे भरेगा?

और मटरू के मन में बिलरा की ही तरह बात उठ खड़ी हुई। सदा दीयर में स्वच्छन्द रहने वाले मटरू के मन पर बिरादरी के रीति-रिवाज का उतना संस्कार न चढ़ा था। उसने स्वच्छन्दता से ही जीवन बिताया था। जब जो मन में उठा, वैसे ही किया था। कभी कोई बन्धन न माना था। वह तो बस इतना ही जानता था कि आदमी के पास बल और बहादुरी होनी चाहिए। फिर कौन रोक सकता है उसे कुछ करने से? उसने तो यह भी तय कर लिया था कि अगर गोपी तैयार हो गया, तो वह यह करके ही दम लेगा। बहुत होगा, गोपी को अपना घर छोड़ देना पड़ेगा। तो उसके दीयर में एक झोंपड़ी और बस जाएगी। उसी की तरह वे भी रहे-सहेंगे। चिरई की जान तो बच जाएगी!

ग्यारह

गोपी अपनी सजा काटकर जब छूटा, तो उसे और कैदियों की तरह वह खुशी न हुई, जो कैद से छूटने के वक़्त होती है। आज वह अपने घर की ओर जा रहा है। आख़िर उसे आज अपनी उस विधवा भाभी के सामने जाकर खड़ा होना ही पड़ेगा, उसे उस दशा में,

अपनी इन आँखों से देखना ही पड़ेगा, जिसके लिए करीब पाँच वर्षों से भी वह पर्याप्त साहस नहीं बटोर सका है।

गाँव में जब वह घुसा, तो सन्ध्या की धुँधली छाया पृथ्वी पर झुकी आ रही थी। जाड़े के दिन थे। चारों ओर अभी सन्नाटा छा गया था। पोखरे से एकाध आदमियों के ही खाँसने-खँखारने की आवाज़ें आ रही थीं। घाट सूना था। गाँव के ऊपर जमे हुए धुएँ का बादल धीरे-धीरे नीचे सरका आ रहा था।

आगे बढक़र गोपी ने सोचा कि किसी से घर का समाचार पूछे। लेकिन फिर ठिठक गया। पास ही छोटा सा मन्दिर था। सोचा, पुजारी जी के पास ही क्यों न चले। भगवान् के दर्शन भी कर ले, पुजारी जी से समाचार भी पूछ ले। गोपी का दिल लरज रहा था। सालों दूर रहने से उसके मन में यह बात उठ रही थी कि जाने इस बीच क्या-क्या हो गया हो। उसे डर लग रहा था कि कहीं कोई उसे बुरी ख़बर न सुना दे।

मन्दिर उसे वीरान-सा दिखाई दिया। आश्चर्य हुआ कि ऐसा क्यों? यह भगवान् की आरती का समय है। फिर भी सन्नाटा क्यों छाया हुआ है? चबूतरे पर कोई बूढ़ा भिखमंगा अपनी गठरी रखे लिट्टी सेंकने के लिए अहरा सुलगा रहा था। उसने गोपी को खड़े देखा, तो पूछा, "का है, भैया?"

"मन्दिर बन्द क्यों है? पुजारीजी नहीं हैं क्या?" गोपी ने उसके पास जाकर पूछा।

भिखमंगा जोर से हँस पड़ा। दाँत न होने के कारण ढेर-सा थूक उसके होंठों से बह पड़ा। वह बोला, "तुम यहाँ के रहनेवाले नहीं हो क्या? अरे, पुजारी को भागे हुए तो आज तीन बरस के करीब हो गये। गाँव की एक बेवा के साथ पकड़ा गया था। उसे लेकर जाने कहाँ मुँह काला कर गया।" और वह फिर जोर से अट्टहास कर उठा।

गोपी के काँपते हाथ उसके कानों पर पहुँच गये। उसका दिल जोरों से धडक़ उठा। उससे एक क्षण भी वहाँ न ठहरा गया। असीम व्याकुलता मन में लिए वह सीधे अपने घर की ओर बढ़ा। एक आशंका उसके मन में काँप रही थी कि कहीं...

अपने घरों के सामने कौड़े के पास बैठे जिन-जिन लोगों ने उस दुख और व्याकुलता की मूर्ति को गुज़रते हुए देखा, वे चुपचाप उसके साथ हो लिये। मूक दृष्टि से कभी-कभी गोपी उनकी जुहार का उत्तर दे देता। न किसी से कुछ पूछने की मन:स्थिति उसकी थी, न लोगों की। लग रहा था, जैसे वे सब अपने किसी प्यारे की लाश जलाकर मौन और उदास लौट रहे हों।

घरवालों को तब तक किसी ने दौड़कर गोपी के आने की सूचना दे दी थी। गोपी अभी अपने घर से कुछ दूर ही था कि उसके कानों में अपने घर की दिशा से जोर-जोर से चीख़कर रोने की आवाज़ें आने लगीं। उसका दिल बैठने लगा। रोम-रोम व्याकुलता की तड़प से काँप उठा। पैरों में कँपकँपी छूटने लगी। आँखों के सामने अन्धकार-सा छा गया। दिमाग में चक्कर-सा आने लगा। उसके साथ-साथ चलने वाले लोगों से उसकी यह दशा छिपी न रही। कुछ ने बढक़र उसे सहारा दिया। एक के मुँह से यों ही निकल गया, "होश-हवास खो बैठा बेचारा! भीम की तरह भाई के मरने का दु:ख ही क्या कम था, जो विधाता ने इसकी औरत को भी छीन लिया!"

गोपी के कानों में इसकी भनक पड़ी तो आँखें फाड़े वह पूछ बैठा, "क्या?"

कइयों ने एक साथ ही कहा, "अब दु:ख करने से क्या होगा, भैया? उनका-तुम्हारा उतने ही दिन का सम्बन्ध लिखा था। अब जो रह गये हैं, उन्हीं को सँभालो। अब उन्हें तुम्हारा ही तो सहारा रह गया है।"

गोपी को लगा, जैसे एक बिजली की तरह जलता शूल उसके दिल में कौंधकर उसके तन-मन को जलाता सन्न से निकल गया। वह गश खाकर सहारा देने वालों के हाथों में आ रहा।

उसे घर ले जाकर लोगों ने चारपाई पर लिटा दिया और पानी के छींटे दे उसे होश में लाने लगे। औरतों ने रोते-रोते, बेहाल हुई माँ और भाभी को, और बड़-बूढ़ों ने बिस्तर पर कूल्हते पिता को किसी तरह यह कहकर चुप कराया कि अगर बड़े होकर तुम्हीं इस तरह तड़प-तड़पकर जान दे दोगे, तो गोपी का क्या होगा?

दुख की घटा छायी रही उस घर पर महीनों। व्यथा के आँसू बरसते रहे सबकी आँखों से महीनों।

दुख की जितनी शक्ति है, उसे कहीं अधिक प्रकृति ने आदमी को सहनशक्ति दी है। जिस तरह दुख की कोई निश्चित सीमा नहीं, उसी तरह मनुष्य की सहन-शक्ति भी असीम है। जिस दुख की कल्पना-मात्र से मनुष्य की आत्मा की नींव तक काँप उठती है, वही दुख जब सहसा उसके सिर पर भहराकर आ गिरता है, तो जाने कहाँ से उसमें उसे सहन करने की शक्ति भी आ जाती है। उसे वह हँसकर या रोकर झेल ही लेता है। दुख की काली घटा के नीचे बैठकर वह तड़पता है, रोता है। रो-रोकर ही वह दुख को भुला देता है। वह घटा छँटती है, खुशी का प्रकाश चमकता है और आदमी हँस देता है। वह यह बात भी भूल जाता है कि कभी उस पर दुख की घटा छायी थी, कभी वह रोया

और तड़पा भी था। यह बात कुछ असाधारण मनुष्यों पर भले ही लागू न हो, पर साधारण मनुष्यों के लिए सर्वथा सच है।

गोपी, उसके माता-पिता और भाभी साधारण ही मनुष्य थे। व्यथा के उमड़ते-घुमड़ते सागर में सालों दुख के थपेड़े खाकर धीरे-धीरे उन्हें लगने लगा कि वे व्यथा और दुख की गरजती लहरें कुछ करुण और कुछ मधुर स्मृतियों की मन्द-मन्द लहरियाँ बन-बन उनके व्यथित हृदयों को अपने कोमल करों से सहला-सहलाकर कुछ आशा, कुछ सुख के झीने-झीने जाल बुनने लगी हैं।

भाभी और देवर, दोनों एक ही तरह के दुर्भाग्य के शिकार थे। उनकी समझ में न आता कि वे कैसे एक-दूसरे को सान्त्वना दें। भाभी ने पूर्ववत् अपने को पूजा और घर के कामों में उलझा दिया था। वह यन्त्र की तरह सब-कुछ करती, जैसे वही-सब करने के लिए इस यन्त्र का निर्माण हुआ हो, जैसे यह यन्त्र एक ही रफ्तार से, इसी तरह चलता रहेगा, काम करता रहेगा, इसके नियम में कभी कोई परिवर्तन न होगा। हाँ, धीरे-धीरे, जैसे-जैसे इसके पुरजे घिसते जाएँगे, इसकी चाल में शिथिलता आती जाएगी, फिर एक दिन इसके पुरजे बिखर जाएँगे, यह एक यन्त्र टूट जाएगा हमेशा के लिए।

भाभी अब कहीं अधिक गम्भीर और चुप और उदास बन गयी थी। मानो अपनी पूजा और कामों के सिवा उसके जीवन में कुछ हो ही नहीं।

गोपी भाभी को देखता और उस निस्सीम उदासीनता, नीरसता और दुख में लिपटी हुई बीमार-सी पुतली को देखकर सोचता कि क्या वह ऐसे ही अपना जीवन बिता देगी? क्या वह सचमुच उसे ऐसे ही जीवन बिताने देगा? दुनिया के बाग में पतझड़ आता है, फिर बसन्त आता है। क्या भाभी के जीवन में एक बार पतझड़ आकर सदा बना रहेगा? क्या फिर उसमें बसन्त न आएगा? क्या फिर एक बार उसमें बसन्त लाया ही नहीं जा सकता? पतझड़ में चुप हुई बुलबुल क्या हमेशा के लिए ही चुप हो जाएगी? क्या उसकी चहक एक बार फिर न सुन सकेगा?

गोपी अपने समाज के रीति-रिवाज से परिचित है। वह जानता है कि उनकी बिरादरी की विधवा लकड़ी का वह कुन्दा है, जिसमें उसके पति की चिता की आग एक बार जो लग जाती है, तो वह जलता रहता है, तब तक जलता रहता है, जब तक जलकर राख नहीं हो जाता। उसे राख हो जाने के पहले किसी को छूने की हिम्मत नहीं होती, बुझाने की तो बात ही दूर। और गोपी सोचता कि क्या उसकी भाभी भी उसी तरह जलकर राख हो जाएगी? वह उस लगी आग को कभी न बुझा सकेगा? गोपी के मन की आँखों के सामने ये प्रश्न हर क्षण चक्कर लगाते रहते हैं। और वह सदा जैसे उन प्रश्नों का उत्तर

ढूँढ़ निकालने में डूबा-सा रहता है। भाभी के सुख-दुख का स्थान यों भी उसके जीवन में कम नहीं रहा है, पर जब भाभी के जीवन में कभी भी ख़तम न होने वाली वीरानी आ गयी है, तो उसका स्थान उसके हृदय में और गहरा हो गया है। वह एक तरह से अपने विषय में कुछ न सोच, सदा भाभी के विषय में सोचा करता है कि कैसे वह अपनी स्नेहशील भाभी को फिर एक बार पहले ही की तरह चहकती हुई देखे।

दुनिया चाहे जिस परिस्थिति में रहे, बेटी वाले बापों को चैन कहाँ? गोपी के जेल से आने का पता जैसे ही उन्हें चला, फिर उन्होंने दौडऩा-धूपना शुरू कर दिया। गोपी के जेल से लौटने की ही तो पख थी। अब शादी पक्की करने में कोई उज्र नहीं होनी चाहिए। पिता उसे सीधे गोपी से बात करने को कह देते। अपंग आदमी ठहरे। सब-कुछ अब गोपी को ही तो करना-धरना है। वह जैसा मुनासिब समझे, करे।

गोपी उन्हें देखकर जल-भुन जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि भाभी के सामने वह कैसे ब्याह रचा सकता है? वह किन आँखों से उस खुशी के उत्सव को देखेगी, किन कानों से ब्याह के गीत सुनेगी, किस हृदय से वह सब सह सकेगी? नहीं-नहीं गोपी जले पर इस तरह नमक नहीं छिडक़ सकता! ऐसा करने से उसका दिल छलनी हो जाएगा।

उसके जी में आता है कि वह मेहमानों को फटकर बताकर कह दे, "तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी बातें मुझसे कहते? कुछ नहीं तो कम-से-कम एक इन्सान होने के नाते ही मेरे दिल की हालत तो समझने की कोशिश करो। शादी की बात करके मेरे हरे ज़ख्मों पर इस तरह नमक तो न छिडक़ो।" लेकिन सौजन्यतावश वह शादी न करने की बात कहकर उन्हें टाल देता है। वे उसे उलझाने की कोशिश करते पूछते हैं, "आख़िर ऐसा तुम क्यों कहते हो?"

गोपी चुप रहता है। वह कैसे बताए कि ऐसा क्यों कहता है?

"आख़िर इस उम्र से ही तुम इस तरह कैसे रह सकते हो?" दूसरा सवाल फेंका जाता है।

गोपी का मन पूछना चाहता है कि भाभी की उम्र भी तो मेरी ही बराबर है, आख़िर वह कैसे रहेगी? लेकिन वह चुप ही रहता है।

तीसरा कम्पा लगाया जाता है, "एक-न-एक दिन तुम्हें घर बसाना ही पड़ेगा, बेटा!"

और गोपी कहना चाहता है कि क्या यही बात भाभी से भी कही जा सकती है? लेकिन उसके मुँह से कोई बोल ही नहीं फूटता। अन्दर-ही-अन्दर एक गुस्सा उसमें घुमड़ने लगता है।

"और नहीं तो क्या? कोई बाल-बच्चा होता, तो एक बात होती," चौथी बार लासा लगाया जाता है। लड़का चुप है इसके मानी यह कि उस पर असर पड़ रहा है। शायद मान जाए।

भाभी के भी तो कोई बाल-बच्चा नहीं है। क्या उसे इसकी ज़रूरत नहीं? गोपी के दिल में एक मूक प्रश्न उठता है। उसके होंठ फिर भी नहीं हिलते। गुस्सा उभरा आ रहा है। नथुने फड़क़ने लगे हैं।

"खानदान का नाम-निशान चलाने के लिए..."

और गोपी और ज्यादा कुछ सुनने की ताब न लाकर गरजते बादल की तरह कड़क़ उठता है, "तुम्हें मेरे खानदान की चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं! तुम चले जाओ!"

"अजीब आदमी है! हम कैसे बातें कर रहे हैं और यह कैसे बोल रहा है!" अपमान का कड़वा घूँट पीकर मेहमान कहते, "दर दहेज की अगर कोई बात हो, तो..."

"कुछ नहीं। कुछ नहीं! मैं शादी नहीं करूँगा! नहीं करूँगा! नहीं करूँगा!" और वह खुद ही वहाँ से उठकर हट जाता।

पर यह सिलसिला टूटने को न आता। और अब तो वह किसी ऐसे मेहमान के आने की ख़बर सुनता है, तो पागल-सा हो जाता है। उसके हृदय का द्वन्द्व और भी तीव्र हो उठता है। वह जैसे अपने ही से मूक आवाज़ में पूछने लगता है, कैसे, कैसे? कैसे अपनी विधवा भाभी की वीरान आँखों के सामने ब्याह का रास-रंग रचाऊँ? कैसे अपने हृदय की तड़प की पुकार न सुनकर, मैं एक अबोध कन्या को लाकर अपना सुख संसार बसाऊँ? नहीं यह नहीं हो सकता!" और वह फूट-फूटकर रो पड़ता।

बारह

दीयर में इस साल खूब हुमककर रब्बी आयी थी। मीलों पकी गेहूँ की फसल से जैसे आसमान लाल हो उठा था। कटिया लगने की ख़बर पाकर दूर-दूर से कितने ही औरत-मर्द बनिहार आकर वहाँ बस गये थे। कम-से-कम पन्द्रह-बीस दिन कटिया चलेगी। मटरू पहलवान खूब बन देता है और किसानों को भी ताकीद कर दी है कि

बनिहारों के बन में कोई कमी न करें। सो, बनिहार मोटरी बाँध-बाँधकर अनाज ले जाएँगे।

गंगा मैया के किनारे एक मेला-सा लग गया है। कई दुकानदार भी घाठी-पिसान, साग-सत्तू, बीड़ी-तमाकू की छोटी-छोटी दुकानें लगाकर बैठ गये हैं। अनाज के बदले वे सौदा देते हैं। पैसा यहाँ किसके पास है? बनिहारों को रोज शाम को बन मिलता है, उसी में से खर्चे के लिए वे थोड़ा सा मीस लेते हैं और ज़रूरत की चीजों से दुकानदारों के यहाँ बदल आते हैं। दिन में तो सभी बनिहार सत्तू खाते हैं। लेकिन रात में रोटी-लिट्टी सेंकने के लिए जब सैकड़ों अहरे गंगा मैया के किनारे जल उठते हैं, तो मालूम होता है, जैसे आसमान में धुँए के बादल छा गये हों।

मटरू यह सब देखता है, तो फूला नहीं समाता। लोग-बाग मटरू की इतनी सराहना करते हैं कि वह शरमा जाता है। लोग कहते हैं, "यह मटरू पहलवान का बसाया इलाका है। दूसरे किसमें इतनी सूझ और हिम्मत थी, जो जंगल को भी गुलज़ार कर देता? पुश्तों से दीयर पड़ा था। कभी कहीं कोई दिखाई न देता था। अब वही धरती है कि मेला लग गया है। सैकड़ों किसानों और बनिहारों की रोजी का सहारा लग गया है। सब उसे असीस दे रहे हैं। पुश्तों से धाँधली करके ज़मींदार जंगल बेचकर हज़ारों हड़पते रहे। मटरू पहलवान के पहले था कोई उनका हाथ पकडऩे वाला? भाई आदमी हो तो मटरू पहलवान की तरह! शेर है, उस पर हज़ारों आदमी क्या यों ही जान दे रहे हैं? दिलों पर ऐसे ही इन्सान राज करते हैं। अब है ज़मींदारों की मजाल कि उसकी तरफ आँख उठा दें।"

मटरू सुनता है, तो दोनों हाथ नदी की ओर उठाकर कहता है, "यह सब हमारी गंगा मैया की किरिपा है! उसके भण्डार में किसी चीज की कमी नहीं। लेने वाला चाहिए, भैया, लेनेवाला! माँ का आँचल क्या कभी बेटों के लिए खाली होता है? वह भी जगत् की माता, गंगा मैया का!"

कृष्ण पक्ष का चाँद जैसे ही आसमान में प्रकट हुआ, मटरू और पूजन ने बनिहारों को हाँक देना शुरू कर दिया। दिन में गरमी और लू के मारे बनिहार परेशान हो जाते हैं, ठण्डी सुबह के दो-तीन घण्टे में जितना काम हो जाता है, उतना दिन के आठ-दस घण्टों में भी नहीं होता। बनिहार नदी के किनारे ठण्डी रेत पर गहरी नींद में कतार लगाकर सोते थे। बड़ी प्यारी उत्तरहिया हवा बह रही थी। चाँद मीठी शीतलता की बारिश कर रहा था। नदी धीमे-धीमे कोई मधुर गीत गुनगुना रही थी। हाँक सुनते ही बनिहार और बनिहारिनें उठ खड़ी हुईं। आलस का नाम नहीं। थकी देहों को नदी की

हवा जैसे ही छूती है, उनमें फिर से नयी ताजगी और स्फूर्ति आ जाती है। यहाँ की दो-चार घण्टे की नींद से ही गाँवों की रात-भर की नींद से कहीं ज्यादा आराम और विश्राम आदमी को मिल जाता है।

डाँड़ पर आग सुलग रही है, पास ही तमाकू और खैनी रखी हुई है। जो तमाकू पीता है, वह चिलम भर रहा है। जो खैनी खाता है, वह सुरती फटक रहा है। थोड़ी देर तक बूढ़े-बूढ़ियों की खों-खों से फिज़ा भर जाती है। फिर कटनी शुरू हो जाती है।

खेत की पूरी चौड़ाई में बनिहार और बनिहारिनें कतार लगाकर पाँवों पर बैठी काट रही हैं, बनिहार एक ओर बनिहारिनें दूसरी ओर। एक सिरे पर मटरू जुटा है और दूसरे पर पूजन। पूजन ने बगल की बूढ़ी औरत को कुहनी मारकर हँसते हुए कहा, "कढ़ाओ एक बढिय़ा गीत।"

बूढ़ी ने मुस्कराकर अपनी बगलवाली को कुहनी मारी, और फिर पूरी जंजीर झनझना उठी। नवेलियों ने खाँसकर गला साफ किया। एकाध क्षण "तू कढ़ा, तू कढ़ा" रहा। फिर धरती की बेटियों के कण्ठ से धरती का जंगली मधु-सा गीत फूट पड़ा। चेहरे दमक उठे, आँखें चमक उठीं, हाथों में तेजी आ गयी। काम और संगीत की लय बँधी, फिजा झूम उठी, चाँद और सितारे नाचने लगे, गंगा मैया की लहरें उन्मत्त हो-होकर तट से टकराने लगीं-

"ऐ पिया, तू परदेस न जा,

वहाँ तुझे क्या मिलेगा, क्या मिलेगा?

यहाँ खेत पक गये हैं, सोने की बालियाँ झूम रही हैं।

मैं हँसिया लेकर भिनसारे जाऊँगी,

गा-नाचकर फसलों के देवता को रिझाऊँगी,

खुश होकर वह नया अन्न देगा, मैं फाँड़ भरकर लाऊँगी।

कूटूँगी, पीसूँगी, पुआ पकाऊँगी,

ठहर देके पीढ़े पर तुझको बैठाऊँगी!

अपने ही हाथों से रच-रच खिलाऊँगी।

याद है तुझे वह पिछली फसल की बात?

ऐ पिया, तू परदेस न जा।

वहाँ तुझे क्या मिलेगा, क्या मिलेगा? "

ऊषा की सिन्दूरी आभा धीरे-धीरे खेतों में फैलकर रंगीन झील की तरह मुस्करा उठी। बनिहारों और बनिहारिनों के चेहरे स्वर्ण-मूर्तियों की तरह दमक उठे। नदी का पानी सुनहरी आबेरवाँ के दुपट्टे की तरह लहरा उठा। कहीं दूर से दरियाई पक्षियों की कूकें शान्त, सुहाने वातावरण में गूँजने लगीं। प्रकृति ने एक अँगड़ाई लेकर खुमार-भरी पलकें उठायीं। सूरज की पहली किरण ने उसके अधर चूमे और चर-अचर ने झूमकर जीवन और प्रेम की रागिनी छेड़ दी।

तभी मटरू के कानों में आवाज पड़ी, "मटरू भैया!"

अचकचाकर मटरू ने देखा और लपककर गोपी के गले से लिपटकर कहा, "गोपी, अरे गोपी! तू कब आ गया, भैया?"

"खूब पूछ रहे हो! चार-पाँच महीने हो गये हमें आये, ख़बर भी न ली?" गोपी ने शिकायत की।

"इतनी जल्दी कैसे छूट गये? मैं तो सोचता था, इस महीने में छूटोगे।" उसके दोनों बाजुओं को अपने हाथों से दबाता मटरू बोला।

"छ:महीने और रेमिशन के मिल गये। सुना कि उधर तुम बराबर घर आते-जाते रहे। इधर क्यों नहीं आये? मैं तो बराबर तुम्हारा इन्तज़ार करता रहा। मजे में तो रहे?" गोपी बोला।

"हाँ, गंगा मैया की सब किरिपा है! तुम अपनी कहो? इधर कामों में बहुत फँसे रहे। यहाँ से हटना बड़ा मुश्किल होता है। सोचा था कि कटनी ख़तम होते ही तुम्हारे पास यहाँ एक रात हो आऊँगा। अच्छा किया कि तुम आ गये। मेरे तो पाँव फँस गये हैं।" अपनी झोंपड़ी की ओर गोपी को ले जाते हुए मटरू ने कहा।

"तुम तो कहते थे कि यहाँ तुम्हीं रहते हो, मैं देखता हूँ कि यहाँ तो एक छोटा-मोटा गाँव ही बस गया है।" चारों ओर देखता हुआ गोपी बोला।

मटरू हँसा। बोला, "सब गंगा मैया की किरिपा है। अब तो सैकड़ों किसान हमारे साथ यहाँ बस गये हैं। मटरू अब अकेला नहीं है। उसका परिवार बहुत बड़ा हो गया है!" और फिर वह हँस पड़ा।

झोंपड़ी के सामने लखना कन्धे तक दाहिने हाथ में पानी-भूसा लिपटाये खड़ा उन्हें देख रहा था। मटरू ने कहा, "तेरा चाचा है बे, क्या देख रहा है? चल, पाँव पकड़!"

लखना पाँव पकडऩे लगा, तो गोपी ने उसे हाथों से उठाकर कहा, "बडक़ा है न?"

"हाँ," मटरू ने कहा, "क्यों बे, भैंस दुह चुका?"

"हाँ," लडक़े ने सिर झुकाकर कहा।

"तो चल, चाचा के लिए एक लोटा दूध तो ला। और हाँ, लपककर खेत पर जा। पाँती छोडक़र आया हूँ।" चटाई पर गोपी को बैठाते हुए मटरू ने कहा।

"अरे, अभी तो मुँह-हाथ भी नहीं धोया। क्या जल्दी है?" गोपी ने कहा।

"शेर भी कहीं मुँह धोते हैं? और फिर दूध के लिए क्या मुँह धोना?" हँसकर मटरू ने कहा।

जेल घर की सब बातें कहकर गोपी ने कहा, "प्राण संकट में पड़ गये हैं। तुमसे राय लेने चला आया। अब तुम्हीं उबारो, तो जान बचे। रोज-रोज मेहमान घर खन रहे हैं। समझ में नहीं आता, क्या करूँ। भाभी की दशा नहीं देखी जाती। बड़ा मोह लगता है! उसकी छाती पर खुशी मनाना हमसे तो न होगा!"

"सच पूछो, तो इसी उधेड़-बुन में मैं भी पड़ा था। वहाँ जाने पर माई और बाबूजी तुम्हारी शादी पक्की करने की बात कहते थे और मैं टाल जाता था। जब से तुम्हारी भाभी को देखा, दुनिया भर की लड़कियाँ नजर से उतर गयीं। सोचा थे, तुम आ जाओ, तो कुछ सोचा जाए। भैया सच कहना, तेरा मन भाभी के साथ शादी करने को है? हमको तो लगता है कि तुम उसे बहुत मानते हो।"

"मेरे चाहने से ही क्या हो जाएगा?" गोपी ने उदास होकर कहा।

"क्यों न होगा? मर्द हो कि कोई ठट्ठा है? सारी दुनियाँ के ख़िलाफ तुम्हारा मटरू अकेले तुम्हें लेकर खड़ा होगा! क्या समझते हो मुझे? मैंने तो यहाँ तक सोचा कि अगर तुम्हारे माँ-बाप घर से निकाल दें, तो यहाँ मेरी झोंपड़ी के पास एक और झोंपड़ी खड़ी

हो जाएगी। और देख रहे हो न ये खेत! मिल-जुलकर काम करेंगे। कोई साला हमारा क्या कर लेगा? सच कहूँ, गोपी, तेरी भाभी की सोचकर मेरा भी कलेजा फटता है। तू उसे अपना ले! बड़ा पुण्य होगा, भैया! कसाई के हाथ से एक गऊ और मिस्कार के हाथ से एक चिरई बचाने में जो पुण्य मिलता है, वही तुझे मिलेगा। बहादुर ऐसे मौके पर पीठ नहीं फेरते!" गोपी की पीठ ठोंकते हुए मटरू ने कहा।

"लेकिन उसकी भी तो कोई बात मालूम हो। जाने क्या सोच रही हो। वह तैयार होगी, भैया?" गोपी ने होंठों में कहा।

"अरे, पाँच महीने तुझे आये हो गये और तुझे यह भी मालूम नहीं हुआ?" मटरू ने आश्चर्य प्रकट किया।

"कैसे मालूम हो, भैया? वह तो बिलकुल गूँगी हो गयी है। बस आँसू भरी आँखों से वैसे ही देखा करती है, जैसे छूरी के नीचे कबूतरी। मैं कैसे जानूँ..."

"अबे, तो एक दिन पूछकर देख।"

"लेकिन, माई, बाबू..."

"एक बात तू समझ ले। माई-बाबू के चक्कर में अगर पड़ा, तो यह नहीं होगा! रीति-रिवाज और संस्कार को बूढ़े जान के पीछे रखते हैं। उम्र-भर की कमाई इज्ज़त आबरू को वे प्राणों से वैसे ही चिपकाये रहते हैं, जैसे मरे बच्चे को बन्दरिया। समझा? तू उनके चक्कर में न पड़! जवान आदमी है। अबे, तुझे डर काहे का? फिर मैं जो हूँ तेरी पीठ पर! देखेंगे कि तेरे ख़िलाफ जाकर कौन क्या कर लेता है! हिम्मत चाहिए, बस हिम्मत! हिम्मत के आगे दुनिया झुक जाती है!"

"अच्छा, तो तुम कब आओगे? तुम जरा माई-बाबूजी को समझाते। वे बड़ी जल्दी मचाये हुए हैं।"

"बस, चार-पाँच दिन में। खेत कटने-भर की देर है। मैं सब कर लूँगा। बस, तू अपनी भाभी को समझा ले। चल, तुझे खेत दिखाऊँ। उधर से ही गंगा मैया में गोता लगाकर लौटेंगे।"

'

—— X ——

https://www.hindiadda.com/ganga-maiya-part-iv/

गंगा मैया भाग 4 - ganga Maiya Part 4

1. गंगा मैया भाग 1
2. गंगा मैया भाग 2
3. गंगा मैया भाग 3
4. गंगा मैया भाग 4
5. गंगा मैया भाग 5
6. गंगा मैया भाग 6